|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

2/2 (श्लोक 14-28), रविवार, 19 जनवरी 2025

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/b_y2k2Ohdqk

सात्त्विक कर्मों का जीवन में महत्व

ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से विवेचन सत्र (बालकों-बालिकाओं हेतु) का शुभारम्भ सड्कीर्तन, भगवान् श्री कृष्ण की प्रार्थना एवम् दीप प्रज्वलन से हुआ। तत्पश्चात् श्रीमद्भगवद्गीता जी के सत्रहवें अध्याय(श्रद्धात्रयविभाग योग) का विवेचन, चिन्तन प्रारम्भ हुआ।
संवादात्मक सत्र होने के नाते बालक-बालिकाओं से समय-समय पर प्रश्न भी पूछे गए।

प्रश्न- आज का सत्र होने तक हम कितने अध्यायों का विवेचन श्रवण कर चुके हैं?
उत्तर- चार अध्याय-
1) अध्याय 12 भक्तियोग
2) अध्याय 15 पुरुषोत्तमयोग
3) अध्याय 16 दैवासुरसम्पद्विभागयोग
4) अध्याय 17 श्रद्धात्रयविभागयोग
आज सत्र के अन्त तक पूर्ण हो जाएगा।

प्रश्न- तीन प्रकार की श्रद्धा कौन-कौन सी है?
उत्तर- सात्त्विक, राजसी, तामसी।

इस अध्याय का प्रथम श्लोक अर्जुन से प्रारम्भ होता है। वे श्रीभगवान से प्रश्न पूछते हैं।

अर्जुन उवाच
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।

अर्थात अर्जुन ने कहा -- हे कृष्ण ! जो लोग शास्त्रविधि को त्यागकर (केवल) श्रद्धा युक्त यज्ञ (पूजा) करते हैं, उनकी स्थिति (निष्ठा) कौन सी है? क्या वह सात्त्विकी है अथवा राजसिक या तामसिक ?

इस अध्याय के पूर्व विवेचन सत्र में हमने समझा कि आहार तथा यज्ञ कितने प्रकार के होते हैं? सात्त्विक मनुष्य, राजसी एवम्

तामसिक यज्ञ का विस्तार पूर्वक विवरण तथा सात्त्विक, राजसी, तामसिक आहारों के विषय में भी विस्तारपूर्वक श्रवण किया। अध्याय सोलह में हमने समस्त छब्बीस दैवीय प्रवृत्तियों का विवरण विस्तारपूर्वक जाना-

श्रीभगवानुवाच
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।16.1।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।16.2।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।16.3।।

प्रश्न- तप कितने प्रकार के होते हैं?
उत्तर- तप तीन प्रकार के होते हैं-
1) शारीरिक तप
2) वाचिक तप
3) मानसिक तप

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि तप क्या होता है। पिछले विवेचन सत्र में हम इस विषय पर चर्चा कर चुके हैं कि तप अर्थात तपस्या। जब कोई मनुष्य हिमालय की कन्दराओं में बैठ, ध्यानमग्न हो निरन्तर ईश्वर के चिन्तन में लीन होता है, तब उसकी वह अवस्था तपस्या कहलाती है तथा वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है। परन्तु श्रीभगवान् यहाँ जिस प्रकार से सात्त्विक तप को अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत करते हैं वह पूर्णत: जीव का उसकी इन्द्रियों पर अर्थात् आत्मनियन्त्रण की पुष्टि करता है।

जैसे यदि कोई बालक अपने जीवन में चिकित्सक, शिक्षक, गणितज्ञ या गायक आदि बनना चाहता है तब ऐसी स्थिति में उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कठोर एवम् सार्थक परिश्रम, एकाग्रता सहित करना होगा। अत: इस हेतु उसे स्वयं को संयमित भी करना होगा। यदि उसका मन अपने पथ से भटक रहा तथा उसे अधिक विश्राम करने हेतु या अधिक क्रीड़ा करने हेतु प्रेरित करता है तब उस बालक को स्वयं के मन को समझाते हुए, उसे नियन्त्रित करना होगा ताकि यथायोग्य परिश्रम कर वह बालक अपने जीवन लक्ष्य को साध सके। अन्यथा उसकी विफलता की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं। किसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एकाग्रता पूर्वक, कठोर परिश्रम करना ही तप कहलाता है।

अगले श्लोक में श्रीभगवान् सात्त्विक तप के विषय में बता रहे हैं।

17.14

देवद्विजगुरुप्राज्ञ, पूजनं(म्) शौचमार्जवम्|
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं(न्) तप उच्यते||17.14||

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुष का यथायोग्य पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना - (यह) शरीर-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- परमेश्वर, ब्राह्मणों, गुरु, माता-पिता, जैसे गुरुजनों का पूजन इस श्लोक में श्रीभगवान् ने शास्त्रोचित बताया है अर्थात् जीवों को अपने ईष्ट देव का अर्चन करना चाहिए। ब्राह्मणों, जिन्हें इस श्लोक में श्रीभगवान् ने द्विज कह सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ है दो बार जन्म लेने वाला। ब्राह्मण बनने हेतु मनुष्य को वेदों के अध्ययन हेतु गुरुकुल जाना होता है ताकि वह शास्त्रोचित शिक्षा प्राप्त कर पूर्णत: परब्रह्म परमेश्वर के चिंतन में संलग्न रहते हुए उस परम ज्ञान को प्राप्त कर सके।

सामान्यतः हमारी वैदिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों को ही शिक्षा देने वाला माना जाता है, परन्तु यहाँ श्रीभगवान् द्वारा स्पष्ट कर दिया गया कि ज्ञान की प्राप्ति जहाँ से भी हो, उसे ग्रहण करना ही किसी मनुष्य हेतु श्रेयस्कर होगा, चाहे ज्ञान प्रदान करने वाला व्यक्ति किसी भी वर्ण का हो, प्राज्ञ कहा जाएगा तथा उसके पूजन को भी श्रीभगवान् ने श्रेष्ठ बतलाया है।

- **शौचम्**- पवित्रता, शुद्धता(आन्तरिक अर्थात् अन्त:करण की शुद्धता एवं बाह्य अर्थात् शारीरिक शुद्धता)। हम मनुष्यों को स्वयम् को, घरों को, निकटवर्ती वातावरण तथा पर्यावरण की शुद्धता, उसकी स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।
- **आर्जवम्**- सरलता का भाव एक शुद्ध भक्त के लक्षणों में से एक है। अपनी धूर्तता से किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाना कहाँ तक उचित है? श्रीभगवान् भी अपने भक्तों हेतु,धूर्तता के विपरीत मन की कोमलता एवं अन्त:करण की सरलता को ही श्रेष्ठ बताते हैं। अत: हमें अपने मन में सरलता लाने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।
- **ब्रह्मचर्य**- जब भक्त नित्य निरन्तर परमपिता परमात्मा के ध्यान में लीन हो उन्हीं का ही चिन्तन करता रहता है, तब वह भक्त ब्रह्मचारी कहलाता है। मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को सर्वदा नियन्त्रित रखना चाहिए एवम् अहिंसा भी एक शारीरिक तपस्या है।
- **अहिंसा-** के विपरीत **हिंसा** क्या है- किसी प्राणी को परेशान करना, किसी को तङ्ग करना, कभी-कभी कुछ उपद्रवी छात्र अपनी ही कक्षा में अध्ययन करने वाले किसी छात्र के प्रति असंवेदनशील हो उसे कष्ट पहुँचाते हैं। हिंसा तीन प्रकार की होती है-
- **शारीरिक हिंसा-** जैसे किसी को थप्पड़ मारना।
- **वाचिक हिंसा-** किसी को अपशब्द बोल जब हिंसा की जाती है।
- **मानसिक हिंसा-** किसी के प्रति मन में अनुचित विचार रखना।

हिंसा के विपरीत होती है अहिंसा अर्थात् किसी के प्रति दुर्भाव नहीं रखना, न ही किसी के प्रति वार्तालाप में अपशब्द कहना, न ही किसी को शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना। किसी की निन्दा न करना भी अहिंसा ही है। ये समस्त शारीरिक तप हैं।

17.15

अनुद्वेगकरं(म्) वाक्यं(म्), सत्यं(म्) प्रियहितं(ञ्) च यत्|
स्वाध्यायाभ्यसनं(ञ्) चैव, वाङ्मयं(न्) तप उच्यते||17.15||

जो किसी को भी उद्विग्न न करने वाला, सत्य और प्रिय तथा हितकारक भाषण है (वह) तथा स्वाध्याय और अभ्यास (नाम जप आदि) भी - यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- सत्य परन्तु अन्य प्राणियों को क्षुब्ध न करने वाले वचन जो प्रिय होने के साथ अन्यों हेतु कल्याणकारी भी हों, सदैव ऐसे ही वचन मुख से उद्यत हों यह प्रयास होना चाहिए। वाणी तप के माध्यम से किस प्रकार अपनी वाणी को संयमित कर, उसे अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है, इस विषय को श्रीभगवान् इस श्लोक के माध्यम से उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि सत्य, प्रिय, लाभकारी तथा अन्यों को क्षुब्ध न करने वाले वाक्य उपयोग में लाना ही किसी भी जीव हेतु वाणी का तप है।

जैसे यदि किसी बालक को उसकी कक्षा में अध्ययनरत छात्र को अपना मित्र बनाना है तब ऐसी स्थिति में क्या उस बालक को अपने उस सहपाठी से अपशब्द पूर्ण वार्तालाप करना चाहिए? या संयमित वाणी सहित प्रिय वचन उसके समक्ष बोलना चाहिए। अन्यथा वह कदापि आपका मित्र नहीं बनेगा।

आप श्रीमद्भगवद्गीता जी की कक्षा में उपस्थित हो जब अपने शिक्षक के समक्ष श्लोक उच्चारित करते हैं तब आपके उच्चारण में हुई त्रुटि को लेकर आपके शिक्षक कभी भी कटु शब्दों का प्रयोग न करते हुए, सदैव सर्वप्रथम आपका द्वारा किए गए श्लोक उच्चारण की प्रशंसा करते हैं तत्पश्चात् आपकी त्रुटि से आपको अवगत कराते हैं तथा विनम्रतापूर्वक आपसे उस त्रुटि को सुधारने का आग्रह करते हैं। यही वाणी का संयम भी है जिसे श्रीभगवान् अपने इस श्लोक के माध्यम से वर्णित करते हैं।

इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान् अर्जुन को स्वाध्याय का भी महत्त्व बतलाते हैं। समस्त मनुष्यों के जीवन में स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। हम सभी हेतु प्रतिदिन रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता जी आदि धार्मिक महत्व के ग्रन्थों का पारायण करना श्रेयस्कर होगा। वैदिक शास्त्रों के अध्ययन द्वारा निश्चित ही हम स्वयं हेतु जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु

अग्रसर होकर, उन वैदिक ग्रन्थों में वर्णित महान चरित्रों से प्रेरणा प्राप्त कर अपने चारित्रिक गुणों में सुधार कर सकेंगे तथा उनके सदृश्य महात्मा बनने हेतु प्रेरित होंगे।

17.16

मनः(फ्) प्रसादः(स्) सौम्यत्वं(म्), मौनमात्मविनिग्रहः|
भावसंशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते||17.16||

मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह (और) भावों की भली भाँति शुद्धि - इस तरह यह मन-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- मन: प्रसाद अर्थात् मन की प्रसन्नता। वेदों के अध्ययन द्वारा हम समझ सकते हैं कि जीवात्मा, परमात्मा का ही अंश है तथा परमात्मा स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। अत: जीव का अन्त:करण यदि शुद्ध है, तब ऐसी स्थिति में ईश्वरीय तत्त्व की उपस्थिति स्वतः प्रतिलक्षित होती है तथा ऐसा जीव सदैव प्रसन्नचित रहते हुए, अपने चहुँ ओर भगवत् कृपा अनुभूत करता रहता है।

भगवद् चिन्तन से जीव का मन सदैव प्रसन्नचित रहता है। मन की यह प्रसन्नता तब अस्थिर होती है जबकि मनुष्य किसी अन्य जीव के दुःख, उसकी पीड़ा में सुख का अनुभव करता है। यह सर्वथा अनुचित एवं निन्दनीय कृत्य है उस जीव का, जो अन्य जीवों की पीड़ा में, उन्हें चोट पहुँचा कर प्रसन्न होता है।

कभी-कभी हमारे माता-पिता हमसे किसी कार्य को करने हेतु कहते हैं, ऐसी स्थिति में उस कार्य को करने हेतु उनके समक्ष किसी वस्तु आदि को प्राप्त करने की इच्छा रखना अर्थात् किसी कार्य को करने के फल में, किसी वस्तु आदि की माँग रखना भी सर्वथा अनुचित कृत्य है।

जब कोई बालक अपना गृहकार्य पूर्ण कर अपनी शिक्षिका का दिखाता है तथा उसके कार्य की शिक्षिका द्वारा प्रशंसा तो उचित है परन्तु मात्र प्रशंसा प्राप्ति हेतु विद्यालय का कार्य करना तथा कुछ सीखने का कोई उद्देश्य न होना अनुचित है। जब हम कुछ अच्छा करते हैं तब निश्चित ही हमारा मन शान्त एवं प्रसन्न होता है। मन की यह शान्ति एवं आनन्द सदैव बना रहे, हमें इस हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए। भगवद् चिन्तन, स्वाध्याय, भजन, भगवद् कथा के श्रवण से जीव का मन श्रीभगवान् में शनैः-शनैः स्थिर होने लगता है तथा वह समस्त सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त जो भगवद् भक्ति के मार्ग पर ऊर्ध्वगति को प्राप्त करता है। मौन का अर्थ है अपने मन में उत्पन्न हो रहे विचारों की लहरों को अवरुद्ध करना। जितने कम विचार मन में उत्पन्न होंगे, अन्त:करण का शुद्धिकरण उतनी ही तीव्र गति से होगा। श्रीमद्भगवद्गीता जी के पठन से जीव के मन में उपस्थित द्वेष, शत्रुभाव का नाश होना प्रारम्भ हो जाता है।

तथा धीरे-धीरे जीव सन्तोष, सरलता, गम्भीरता, आत्म-संयम एवम् जीवन की शुद्धि, ये समस्त जो मन की तपस्याएँ हैं, को आत्मसात् कर लेगा।

17.17

श्रद्धया परया तप्तं(न्), तपस्तत्त्रिविधं(न्) नरैः|
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः(स्), सात्त्विकं(म्) परिचक्षते||17.17||

परम श्रद्धा से युक्त फलेच्छा रहित मनुष्यों के द्वारा (जो) तीन प्रकार (शरीर, वाणी और मन) - का तप किया जाता है, उसको सात्त्विक कहते हैं।

विवेचन- कैसे कोई मनुष्य सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक तप को वर्गीकृत कर सकता है। शारीरिक, वाणी एवम् मानसिक तप किस वर्ग के अन्तर्गत आएंगे यह उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है अर्थात् वे तप किस उद्देश्य से किये जा रहे हैं।

जब तप भौतिक लाभ की इच्छा से रहित तथा मात्र परमेश्वर में प्रवृत्त मनुष्यों द्वारा दिव्य श्रद्धा से सम्पन्न होते हैं तब ये तप सात्विक तप कहलाते हैं।

17.18

सत्कारमानपूजार्थं(न्), तपो दम्भेन चैव यत्|
क्रियते तदिह प्रोक्तं(म्), राजसं(ञ्) चलमध्रुवम्||17.18||

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये तथा दिखाने के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित (और) नाशवान फल देने वाला (तप) राजस कहा गया है।

विवेचन- जब मनुष्य स्वयं द्वारा किए गए तप के फलस्वरूप कुछ प्राप्त करने की इच्छा रखता है अर्थात् उसके तप सदैव उसकी इच्छाओं से प्रेरित होते हैं। वे राजसिक तप कहलाते हैं। अर्थात् जो तपस्या दम्भपूर्वक तथा सम्मान, सत्कार एवं मात्र कर्मकाण्ड के उद्देश्य से सम्पन्न की जाती है, वह राजसी (रजोगुणी) कहलाती है। यह न तो स्थायी होती है न ही शाश्वत।

जिस प्रकार किसी बालक के माता-पिता बालक को उनके प्रति तथा समाज में अन्य लोगों के समक्ष उचित आचरण रखने हेतु निर्देशित करते हैं परन्तु यदि वह बालक अपने अच्छे आचरण, स्वभाव के प्रतिफल माता-पिता से किसी लाभ की अपेक्षा रखे तब इस प्रकार का तप राजसी तप कहा जाएगा।

17.19

मूढग्राहेणात्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः|
परस्योत्सादनार्थं(म्) वा, तत्तामसमुदाहृतम्||17.19||

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिये किया जाता है, वह (तप) तामस कहा गया है।

विवेचन- अज्ञानतावश जब तप, कुछ ऐसे कर्मों की सिद्धि हेतु होते हैं जो किसी अन्य मनुष्य या प्राणी हेतु उसे शारीरिक, वाचिक या मानसिक रूप से हानि पहुँचाने हेतु किए जाते हैं। ऐसे तप तामसी तप कहलाते हैं। भगवद् चिन्तन में संलग्न मनुष्य के मन में सदैव अच्छे विचारों का उद्गम होता रहता है तथा यह विचार जीवों के कल्याण हेतु होते हैं, न कि उन्हें कष्ट पहुँचाने हेतु। मनुष्य को, यदि उसके मन में, मूर्खतावश आत्म-उत्पीड़न हेतु या अन्यों को विनष्ट करने या हानि पहुँचाने हेतु कोई विचार उत्पन्न होता है तब उस विचार को कदापि क्रियान्वित नहीं होने देना चाहिए तथा सदैव अपने विचारों का भी चिन्तन कर त्यागने योग्य दूषित विचारों को त्याग देना चाहिए।

17.20

दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान् इस श्लोक के माध्यम से मनुष्य द्वारा किए गए सात्त्विक दान के विषय में बताते हैं। हम जानते हैं कि दान अनेक प्रकार के होते हैं।

दान कितने प्रकार के तथा कौन-कौन से होते हैं?
अन्न दान, नेत्र दान, धन दान, वस्तु दान, विद्या दान, रक्त दान आदि।

श्रीभगवान् ने इस श्लोक तथा आगे आने वाले अन्य दो श्लोकों के माध्यम से सात्त्विक, राजसिक तथा तामसी समस्त प्रकार के दानों के विषय में स्पष्ट किया है।

जो दान कर्तव्य समझकर, किसी प्रत्युपकार की आशा बिना, समुचित काल तथा स्थान में एवं योग्य व्यक्ति को दिया जाता है, वह सात्विक माना जाता है अर्थात् जब दान किसी अभावग्रस्त मनुष्य या अन्य प्राणी को दिया जाए, जैसे कोई व्यक्ति कई दिनों से भूखा है तब उसे अन्नदान दिए जाने पर ही उस दान का महत्व है। अन्यथा किसी ऐसे व्यक्ति को जो अभी-अभी भर पेट भोजन कर चुका है तथा यदि हम ऐसे व्यक्ति को अन्नदान करते हैं इस प्रकार के दान का कोई महत्व नहीं रह जाता क्योंकि जो व्यक्ति दान में दी जाने वाली किसी वस्तु से प्रारम्भ से ही पूर्ण है तब वह दान ही व्यर्थ हो जाता है। दान सदैव सुपात्र को ही देना चाहिए। धन यदि दान के रूप में किसी कुपात्र को दे दिया तब वह उसका दुरुपयोग करते हुए उस धन को स्वयं के व्यसनों की पूर्ति जैसे मदिरापान, द्युतक्रीड़ा आदि हेतु लगा सकता है।

दान देते हुए देने वाले में दम्भ, गर्व आदि आसुरी प्रवृत्तियाँ विद्यमान नहीं होनी चाहिए। दान सदैव कर्तव्य समझ कर करना चाहिए। मन में, हमने अब तक इतना धन दान दे दिया आदि विचार नहीं आने देने चाहिए। तब इस प्रकार का दान सात्त्विक दान बन जाता है।

17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|
दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् इस श्लोक में राजसी दान को वर्णित करते हैं कि जो दान प्रत्युपकार की भावना से या कर्मफल की इच्छा से या अनिच्छापूर्वक दिया जाता है, वह रजोगुणी (राजसी) कहलाता है।
राजसी दान वास्तव में है क्या?
जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को कोई वस्तु दान करता है, तब यदि वह स्वयं की प्रसिद्धि की चाह रखते हुए अपना फोटो आदि लेता है या जिस व्यक्ति को दान दिया गया है, उससे दान के परिणामस्वरूप धन्यवाद, नमस्ते आदि जैसे आदरसूचक शब्दों के प्रयोग की कामना करता है तब ऐसा दान राजसी दान हो जाता है।

शास्त्रों में उल्लेखित है कि जब दान दिया जाता है उस क्षण सीधे हाथ से दिए गए दान के विषय में वाम हस्त को भी बोध नहीं होना चाहिए। हमें कर्तव्यनिष्ठ हो बिना किसी प्रतिफल की इच्छा किए, अभावग्रस्त व्यक्ति को दान देना चाहिए। दान सहित दाता की प्रतिफल की इच्छा ही दान को राजसी बना देती है।

17.22

अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|
असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

विवेचन- जब दाता अपने पूर्ण मन से किसी व्यक्ति को दान नहीं करता। जैसे किसी बालक की माँ ने उसे सौ रुपये दान करने हेतु दिए। परन्तु उस बालक की, माँ द्वारा दिए गए उन सौ रुपयों को दान करने की इच्छा नहीं है तथापि वह माँ पूछेगी, इस हेतु उन सौ रुपयों का दान करता है। चूँकि उस बालक को यह दान अपनी माँ के भय से करना पड़ा तब इस प्रकार किये गए दान से श्रीभगवान् कदापि प्रसन्न नहीं होते तथा यह दान सात्विक दान की श्रेणी में न आकर तामसी दान बन जाता है। अतः जो दान किसी अपवित्र स्थान में, अनुचित समय में, किसी अयोग्य व्यक्ति को या समुचित ध्यान एवम् आदर बिना दिया जाता है, वह

तामसी कहलाता है।

17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

विवेचन- हम सभी के कोई न कोई नाम होते हैं, जिनसे हमें हमारे जानने वाले पुकारते हैं। सृष्टि के आदि काल से ॐ, तत् ,सत् ये तीन शब्द परब्रह्म को सूचित करने हेतु प्रयुक्त किए जाते रहे हैं अर्थात् श्रीभगवान् को भी तीन नामों से सम्बोधित किया जाता है— ॐ तत् सत्।

यह तीनों साङ्केतिक अभिव्यक्तियाँ ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते समय तथा ब्रह्म को सन्तुष्ट करने हेतु यज्ञों के समय प्रयुक्त होती थीं।
जैसे—

- **ॐ नमः शिवाय।।**
- **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।**
- **ॐ गण गणपतये नमः।।**

श्रीमद्भगवद्गीता जी के प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक पुष्पिका दी जाती है। उस पुष्पिका में श्रीभगवान् को ॐ तत् सत् सम्बोधन द्वारा पुकारा जाता है।

जब हम यज्ञ, तप, दान आदि करते हैं तब भी श्रीभगवान् पर स्वयं के समस्त कर्मों को उनके इसी नाम को स्मरण कर अर्पित किया जाता है। समस्त वैदिक मंत्रों का प्रादुर्भाव ॐ से ही हुआ है। चाहें वह गायत्री मंत्र ही क्यों न हो?
ॐ को ब्रह्माण्ड की ध्वनि कहा जाता है।
तत् से तात्पर्य वह अर्थात् वे श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिव जी या कोई भी माता स्वरूपा जैसे पार्वती माँ, सीता माँ, लक्ष्मी माँ समस्त देवों हेतु समग्र रूप से सम्बोधन है।
सत् अर्थात् परम् सत्य। श्रीभगवान् ही परम् सत्य हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप परमपिता परमात्मा हैं। उन्होंने ही इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। वे शाश्वत हैं परन्तु उनके द्वारा निर्मित सृष्टि गतिशील, अस्थिर, निरन्तर परिवर्तनशील है। अत: वे **ॐ तत् सत्** हैं।

17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

विवेचन- ॐ के विषय में श्रीभगवान् वर्णित करते हैं कि यज्ञ, तप, दान जैसी समस्त क्रियाओं के मंत्रों का प्रारम्भ **ॐ** से ही होता है। अतएव योगीजन ब्रह्म की प्राप्ति हेतु शास्त्रीय विधि अनुसार यज्ञ, दान तथा तप की समस्त क्रियाओं का शुभारम्भ सदैव **ॐ** से करते हैं।

17.25

तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|
दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

विवेचन- सृष्टि में विद्यमान समस्त जीवात्माओं के जीवन का एक ही उद्देश्य है, मोक्ष की प्राप्ति। भगवद् कृपा की प्राप्ति तथा इस भवसागर रूपी संसार से मुक्ति प्राप्त करने हेतु समस्त जीवात्माएँ सतत प्रयत्नशील रहती हैं। अत: मनुष्य को चाहिए कि कर्मफल की इच्छा किए बिना विविध प्रकार के यज्ञ, तप तथा दान को तत् शब्द कह कर सम्पन्न करे तथा ऐसी ही दिव्य क्रियाओं का उद्देश्य भव-बन्धन से मुक्त होना है।

17.26

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

विवेचन- इस श्लोक के द्वारा श्रीभगवान सत् की महिमा का वर्णन करते हैं। सत् भाव-ब्रह्म के स्वभाव के सन्दर्भ में।
किसी व्यक्ति के अच्छे गुणों, उत्तम विचारों से पूर्व सत् का उपयोग प्रत्यय की भाँति किया जाना उस शब्द को विशेष तथा शुभ बना देता है। जैसे— सत् बुद्धि, सत् आचरण, सत् विचार आदि। सत् चूँकि श्रीभगवान् हेतु ही सम्बोधन है तथा श्रीभगवान् स्वयं में सत् चित आनन्द हैं अर्थात् ultimate happiness अत: जब उनका कोई भक्त अपने समस्त कर्मों को श्रीभगवान् को अर्पित कर देता है तब स्वतः ही वह शुद्ध भक्त हो जाता है तथा उसके मन में उत्पन्न भावों में सत् का प्रादुर्भाव होता है।

17.27

यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|
कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||

यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

विवेचन- परम सत्य भक्तिमय यज्ञ का लक्ष्य है तथा उसे सत् शब्द से अभिहित किया जाता है। हे पृथापुत्र! ऐसे यज्ञ का सम्पन्न कर्ता भी सत् कहलाता है जिस प्रकार यज्ञ, तप तथा दान के समस्त कर्म भी जो परमपुरुष को प्रसन्न करने हेतु सम्पन्न किए जाते हैं, सत् हैं।

17.28

अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

विवेचन- हे पार्थ! श्रद्धा के बिना यज्ञ, दान या तप के रूप में जो किया जाता है, वह नश्वर है। वह असत् कहलाता है। वह

दिखावा मात्र है तथा इस जन्म एवं अगले जन्म-दोनों में ही व्यर्थ जाता है अर्थात् इस लोक में तथा परलोक में उस अश्रद्धा से युक्त कर्म से किसी भी प्रकार का पुण्य प्राप्त नहीं होता। अत: श्रीभगवान् का नित्य-प्रति पूजन, अर्चन, उनका चिन्तन, मनन सदैव शुभ फल दायी होता है। श्रीभगवान् को अपने हृदय रूपी मन्दिर में विराजित करने पर, स्वतः ही मन के भाव परिवर्तित हो जाते हैं तथा कलुषित विचारों का विलुप्तीकरण एवं शुद्ध विचारों का समावेश मन-मस्तिष्क में शनैः-शनैः होता जाता है। जब श्रद्धापूर्वक, बिना किसी फल की कामना के समस्त कर्म जीव द्वारा श्रीभगवान् के श्रीचरणों में अर्पित कर दिए जाते हैं तब वे स्वतः ही शुभ फल प्रदायी हो जाते हैं। सम्पूर्ण विवेचन सत्र को श्रीभगवान् के चरणों पर अर्पित कर अर्जुन को श्रीभगवान् द्वारा प्रदत्त श्रीमद्भगवद्गीता जी, जो समस्त उपनिषदों का साररूप हैं, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र हैं, उन्हें भी नमन करते हैं।

विचार-मन्थन (प्रश्नोत्तर)-

प्रश्नकर्ता- अथर्व जी
प्रश्न - जिज्ञासु (कंठस्थीकरण) की परीक्षा में कितने अध्याय की परीक्षा होगी?
उत्तर - जिज्ञासु की परीक्षा में **तीन(3)** अध्यायों की परीक्षा होगी।(**12वें, 15वें और 16वें**)। इसके लिए अलग से **कंठस्थीकरण की कक्षाएँ भी चलाई जा रही हैं।** **www.kk.learngeeta.com** इस लिंक के द्वारा जुड़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता-रुद्र जी
प्रश्न -अमृतसर में जलियाँवाला बाग में निर्दोष व्यक्तियों पर गोलियाँ चलाने वाले जनरल को उधम सिंह ने क्यों मारा?
उत्तर - 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जालियाँवाला बाग में निर्दोष लोगों पर गोलियाँ चला कर जनरल डायर ने उनकी हत्या करवा दी। उसकी इस दुष्टता के लिए **उधम सिंह जी** ने **राष्ट्रधर्म का कर्तव्य** निभाने के लिए जनरल डायर को मार कर उसे दण्ड दिया।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||